नालन्दा पर बौद्ध का प्रभाव

दुर्लभ बोरी*

नालन्दा में तथागत प्रायः विश्राम हेतु ठहरा करते थे। लेकिन मुख्य कर्मभूमि के रूप में इस स्थल को प्रश्रय नहीं दिया गया था। फिर भी यह स्थल बौद्ध धर्म से प्रभावित था। भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौदगल्यायन नालंदा के समीपस्थ ग्रामों के ही थे। ये दोनों ब्राह्मण कुलीन थे और उनमें बचपन से ही गाढ़ी मित्रता थी। यह मित्रता कई पीढ़ियों की थी। ऐसा कहा जाता है कि दोनों एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। उनका रहना–सहना, पढ़ना–लिखना साथ–साथ होता था। एक बार दोनों साथ–साथ कहीं पड़ोस के गाँव में मूक अभिनय देखने गये। उसके पश्चात् दोनों सन्यासी हो गये और राजगृह में संजम के आश्रम में अध्ययन करने लगे। इन दोनों ने यद्यपि अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था तथापि इच्छित ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो पाई।

सारिपुत्र एक दिन किसी कार्यवश राजगृह में थे। तभी उन्हें संस्कारयुक्त अश्वजित नामक भिक्षु दिखाई पड़ा जिसने सारिपुत्र को बुद्ध के बारे में बताया। अश्वजित से बुद्ध उनके उपदेशों के बारे में जानकर सारिपुत्र को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने बुद्ध की जानकारी अपने परम मित्र महामोद्गल्यायन को भी दी। अब दोनों ने संजय से बौद्ध धर्म, ग्रहण करने की अनुमति मांगी। संजय ने अनुमति नहीं दी फिर भी ये दोनों बुद्ध से दीक्षित होने चले गये।

सारिपुत्र के पिता का नाम ''वंगन्त और माता का नाम रूपसारि'' था। वंगन्त और रूपसारि के चार लड़के और तीन लड़कियाँ थीं। सबसे बड़ी सारिपुत्र थे। अन्य तीन भाई थे– चुन्द, उपसेन और रेवत तथा तीन बहने थीं– चाला, उपचाला और शिशुपचाला। सारिपुत्र के बौद्ध धर्म में प्रव्रजित होने के बाद ये सभी भाई–बहन बौद्ध धर्म में प्रव्रजित हो गये।

सारिपुत्र के पिता अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण थे और समाज में इन्हें एक आदरणीय स्थान प्राप्त था। कुछ ही समय के बाद इनकी मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु और संतानों के भिक्षु हो जाने के बाद सारिपुत्र की माँ के हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति विद्रोहात्मक भाव उभर गये थे।

***इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।**

सारिपुत्र बचपन से ही बड़े मेधावी थे और राजगृह में संजय के आश्रम में मीमांसा शास्त्र का अध्ययन कर लिया था। बौद्ध होने के बाद उन्होंने चार जैन भिक्षुणियों को वैशाली में शास्त्रार्थ में पराजित किया था। पश्चात् सारिपुत्र की राय पर ये चारों तथागत की शिष्यायें बनीं।

भगवान बुद्ध सारिपुत्र के ज्ञान को, उनके साधु–वरित स्वभाव को बहुत अधिक सम्मान देते थे। बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल की दीक्षा इनसे दिलवाई थी तथा राहुल ने अपना ज्ञान सारिपुत्र की देख–रेख में ही बढ़ाया था। जब कभी संघ में कोई समस्या आती, उसके समाधान के लिए सारिपुत्र को ही भेजा जाता। वस्तुतः उस समय बौद्ध संघ में सारिपुत्र जैसा प्रभावशाली भिक्षु कोई नहीं था। देवदत्त ने जब बुद्ध के संघ से वज्जिदेश के 500 भिक्षुओं को फोड़ लिया तब बुद्ध की चिन्ता को सारिपुत्र और मौदगल्यायन ने दूर किया था। बुद्ध के ये दोनों शिष्य गयासीस पर्वत पर गये और देवदत्त के समक्ष ही अपनी प्रगाढ़ विद्वता और अमित ज्ञान से उन पाँच सौ भिक्षुओं को अपने पक्ष में कर लिया। इतना ही नहीं, इस प्रकार बौद्ध संघ के बीच में आई दरार को भी उन्होंने समाप्त कर दिया था।

एक बार जब भगवान बुद्ध मल्लों की राजधानी पावा के नये संस्थागार में संघ के साथ विहार कर रहे थे, उनके संघ में भारी फूट का लक्षण दिखाई पड़ा सारिपुत्र ने अपने उपदेश वाणी से संघ की एकता को बनाये रखा। नालंदा के इस ब्राह्मण कुमार के पास अद्भुत विलक्षण मेधाशक्ति थी। सारिपुत्र की उपदेशवाणियों में जादू सा असर था। इसका उदाहरण वह उपदेश है जिसे उन्होंने श्रावस्ती के जेतवन–विहार में संघ के समक्ष दिया था। उस समय महामोद्गल्यायन ने कहा था– ''अश्रद्धालुशठ, मायावी, पाखण्डी, उद्धृत, चपल, मुखर, असंयत भाषी, असंतेन्द्रिय, भोजन की मात्रा नहीं जानने वाले जागरण में तत्पर नहीं रहने वाले, धन जोड़ने वाले, कायर, आलसी, अनुद्योगी, मुषित स्मृति, दुष्प्रज्ञ और विभ्रान्तचित्त आदि लोगों के हृदय को अच्छी तरह समझकर ही, उन्हें सुमार्ग पर अग्रसर कर देने वाले सारिपुत्र के ये उपदेश–वाक्य है। भगवान् बुद्ध के हृदय मे उनके लिए सम्मानपूर्ण त्याग था।

सारिपुत्र धर्म सेनापति के रूप में थे। ये बौद्ध–दर्शन तथा ब्राह्मण ग्रन्थ एवं दर्शन के भी अगाध विद्वान थे। उनकी एक और अपनी विशेषता थी। वह यह कि बौद्ध संघ में ऐसा उद्यमी, निरहंकार, विनयी और शीलवान् दूसरा कोई भिक्षु नहीं था। ये बड़े विनम्र और स्वतः अपने कार्यो को करने में विश्वास करते थे। संघ में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के बावजूद सारिपुत्र अपने हाथों आश्रम में झाड़ू लगाते, आश्रम के बर्तन साफ करते थे और जगह नहीं मिलने पर आश्रम के बाहर ही सो रहते थे। सारिपुत्र द्वेष रहित एवं अत्यन्त उदार विचार वाले थे।

सारिपुत्र का परिनिर्वाण बुद्ध के परिनिर्वाण से केवल छः मास पूर्व जन्मभूमि नामक ग्राम में माता रूपसारि की गोद में ही हुआ था।

महामोद्गल्यायन भगवान बुद्ध के दूसरे पियतम शिष्यों में से थे। उन्होंने भी अपने प्रिय मित्र सारिपुत्र के साथ–साथ 44 वर्षों तक बौद्ध धर्म और बौद्ध संघ की सेवा की। सारिपुत्र की तुलना में ये अधिक मेधावी थे। अर्हत प्राप्त करने में जहाँ सारिपुत्र को इक्कीस दिनों का समय लगा था, वहीं महामोद्गल्यायन को मात्र सात दिनों का समय लगा था, बौद्ध संघ में सारिपुत्र के बाद इन्हीं का स्थान था। सारिपुत्र ने राहुल को प्रव्रज्या दी थी और उन्होंने केश काटकर काषाय वस्त्र दिया और ''शरण'' में प्रतिष्ठित किया था।

सारिपुत्र की मृत्यु के ठीक पंद्रह दिनों बाद राजगृह में एक आश्रम में धर्म विद्रोहियों ने मोद्गल्यायन की हत्या कर दी। अग्रहायण कृष्ण अमावस्या की रात में हत्यारों ने उनकी सूनी कुटी को घेरकर लाठियों के प्रहार से उनके मस्तक को चूर–चूर कर शव को एक झाड़ी में फेंक दिया था। अपने दोनों शिष्यों की मृत्यु पर भगवान बुद्ध को असीम वेदना हुई थी। उनकी मृत्य के बाद छः मास के भीतर ही भगवान बुद्ध का भी परिनिर्वाण हो गया था।

नालंदा के इन दो रत्नों ने बौद्ध संघ की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। नालंदा को इसके लिए गर्व था। इन दोनों के कृत्यों ने नालंदा को बुद्धमय बना दिया था। बाद में यह स्थल एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र के रूप में बौद्ध धर्म की सेवा करता रहा। विश्वविद्यालय की स्थापना के पूर्व ही नालंदा बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र बन चुका था। तथागत ने स्वतः अपने शिष्यों से यहाँ कई बार धर्मालाप किया था। तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात् के नालन्दा की जानकारी का अभाव है। तारानाथ और ह्वेनसांग के विवरणों से नालंदा की विस्तृत जानकारी मिल पाती है। तारानाथ की प्रसिद्ध पुस्तक ''हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म'' से ही ज्ञात होता है कि नालन्दा सारिपुत्र की जन्मभूमि थी जहाँ उसने 80 हजार अर्हतों के साथ निर्वाण की प्राप्ति की थी। यहीं पर सारिपुत्र की स्मृति में एक चैत्य का निर्माण किया गया था। इसी चैत्य के समीप अशोक ने एक विहार का निर्माण कराया था। पश्चात् 100 ई0 के लगभग यह भूमि नागार्जुन और आर्यदेव की कर्मभूमि रही। इन्होंने इस भूमि को एक शिक्षा केन्द्र का रूप देना चाहा था। तारानाथ के अनुसार नागार्जुन ने यहाँ एक सौ साठ मंदिरों का निर्माण किया था। चीनी यात्री फाहियान ने ''नाल'' नामक ग्राम की चर्चा की है। यह नाल संभवतः नालंदा ही था। संभवतः फाहियान ने इस क्षेत्र का भ्रमण नहीं किया था, फलतः उसने क्षेत्र की महत्ता पर प्रकाश ही नहीं डाला। जो भी हो नालंदा की दूरी मगध की राजधानी राजगृह से बहुत ही कम (7 मील) थी। इसी क्रम में राजधानी के कोलाहल से दूर नालन्दा में बौद्ध भिक्षुओं एवं ब्रह्मचारियों के लिए विहारों का निर्माण कराया गा था। ये विहार इनके लिए बड़े उपयुक्त थे जो धीरे–धीरे शिक्षा के केन्द्र बनते जा रहे थे।

हर्ष ने नालन्दा में एक विशाल विहार का निर्माण कराया था। इस विहार के चारों ओर विशाल ऊँची–ऊँची दीवारें थीं। हुएन–त्सांग ने यहाँ 24.4 मीटर ऊँची ताँबे की बुद्ध मूर्ति को देखा था जिसे अशोक राजा के वंश के पूर्णवर्मन ने स्थापित किया था। यह संभवतः छठी शताब्दी ई0 के पूर्वार्द्ध का था। हर्ष ने अपने शासनकाल में नालंदा विश्वविद्यालय के उत्थान में व्यक्तिगत रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। विश्वविद्यालय की ओर से जहाँ विद्यार्थियों और आचार्यों के आवास और भोजन की व्यवस्था थी वहीं हर्ष ने भी इस प्रकार की व्यवस्था की थी। प्रसिद्ध आचार्य के लिए राज्य की ओर से विशेष सुविधायें दी गई थी। चीनी पर्यटक हुएन–त्सांग के विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय के निर्माण में न केवल हर्ष अपितु उसके बाद के शासकों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया था। हर्ष के हृदय में विश्वविद्यालय के आचार्यों के प्रति असीम सम्मान था। वह स्वतः अपने को उनका सेवक मानता था। राजकीय संरक्षण और अनुदान विश्वविद्यालय की प्रगति का मुख्य आधार था।

नालन्दा से प्राप्त लेख एवं मुहरों से भी कुछ अन्य शासकों की जानकारी मिलती है। इन शासकों ने भी नालन्दा विश्वविद्यायल को संरक्षण दिया था। इनमें शासक यशोवर्मदेव के एक मंत्री मालाद भी महत्वपूर्ण है। यशोवर्मदेव ने भी यहाँ संघाराम विहार का निर्माण कराया था। यह कन्नौज का शासक था जिसने 728–745 ई0 तक शासन किया था। हर्ष के समय नालंदा को पूर्ण राजकीय संरक्षण मिला था। हुएन–त्सांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि नालंदा इन दिनों अत्यन्त सुखी और समृद्ध था। इसका मूल कारण था, हर्ष स्वतः विश्वविद्यालय एवं यहाँ के आचार्यों और भिक्षुओं को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखता था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची : –

1. संयुक्त निकाय, 1.322,40.9;
2. नालंदा पास्ट एंड प्रेजेण्ट, नालंदा प्रकाशन
3. मज्झिम निकाय, 2.1.6
4. विनय पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृ0 465–466, बुद्धचर्या,
5. म0नि0, 2.5.7; 3.5.2;
6. हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इंडिया, तारानाथ,
7. दी यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा, संकालिया, यशोवर्मदेव का नालंदा प्रस्तर लेख।
8. ह्वेनसांग–11,
9. इत्सिंग–बील,
10. हुएन–त्सांग रिकार्ड, बील–11,
11. ए रिकार्ड ऑफ द बुद्धिस्ट रिलिजन, तबकुस, आक्सफोर्ड, 1896,
12. द एंटीक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, डी0 आर0 पाटिल